(2013] 14 एस.सी.आर 263

कमलेश कुमार और अन्य

बनाम

झारखंड राज्य और अन्य

(स्पेशल लीव याचिका (सीआरएल)) 2012 की संख्या 6219-20)26 सितंबर, 2013

[एच.एल.] गोखले और मदन बी. लोकुर, जे. जे.]

आपराधिक मुकदमाः - मुकदमों का हस्तांतरण- प्रशासनिक स्थानांतरण को प्रभावी बनाने के लिए उच्च न्यायालय की प्रशासनिक शक्ति- याचिकाकर्ताओं पर मुकदमा चलाएं। 56 फेरा मजिस्ट्रेट के समक्ष- फेरा को फ़ेमा द्वारा प्रतिस्थापित किया गया - फुल उच्च न्यायालय ने फेरा/ फेमा के तहत मुकदमे को चारा घोटाले से संबंधित मामलों की सुनवाई करने वाले विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित करने का प्रस्ताव पारित किया- राज्य सरकार ने अधिसूचना जारी कर विशेष न्यायाधीश को याचिकाकर्ताओं के मामले की सुनवाई करने का अधिकार दिया- याचिकाकर्ता के मुकदमे को विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित करना- आयोजित की वैधानिकताः यद्यपि फेमा की धारा. 49 (4) को ध्यान में रखते हुए फेमा द्वारा निरसित और प्रतिस्थापित किया गया था, फेमा के अधीन किए गए सभी अपराध फेमा के प्रावधानों द्वारा शासित होते रहे, जैसे कि उस अधिनियम को निरसित नहीं किया गया था। एफ. ई. आर. ए. का 56 गैर- संज्ञेय- इसके अलावा, एफ. ई. आर. ए. की धारा 61 (1) में कहा गया है कि मजिस्ट्रेट के लिए एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 के अधीन आवश्यक दंडादेश पारित करना 'विधिसम्मत होगा'। - इसमें यह नहीं कहा गया है कि अकेले मजिस्ट्रेट को आवश्यक सजा देने का अधिकार है, ऐसे मामले में कार्यवाही को उसके न्यायालय से स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है- अपराध गैर-संज्ञेय था, और इसलिए यह अनिवार्य नहीं था कि इसका मुकदमा केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा चलाया जाना चाहिए था- यह नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट के न्यायालय को एफ. ई. आर. ए. के प्रावधानों के उल्लंघन से संबंधित मामलों की सुनवाई करने के लिए एक विशेष अधिकार क्षेत्र था, और उन मामलों को विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था।

उच्च न्यायालय के पास सीआरपीसी की धारा 407 के तहत मामलों और अपीलों को स्थानांतरित करने की शक्ति है जो अनिवार्य रूप से एक न्यायिक शक्ति है- अपनी प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करके मामलों को स्थानांतरित भी कर सकता है।

भारत का संविधान, 1950- अनुच्छेद. 227- विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 61 और 62, और एस.एस..9 (1) (ए) और (बी) और एस.एस.. 56, 64(2) - विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999- s.49 (4)-दंड प्रक्रिया संहिता, 1973-s.407. आपराधिक मुकदमा- मजिस्ट्रेट- फेरा के समक्ष याचिकाकर्ताओं का मुकदमा FERA के धारा 56 अंतर्गत फ़ेमा द्वारा प्रतिस्थापित किया गया- चारा घोटाले से संबंधित मामलों की सुनवाई करने वाले विशेष न्यायाधीश को फेरा/ फेमा के तहत मुकदमे का हस्तांतरण- क्या अपील का अधिकार इस प्रकार के अंतरण द्वारा छीन लिए गए याचिकाकर्ताओं को दिया गया है- आयोजित (प्रति लोकुर, जे। }

- याचिकाकर्ताओं को अपील करने का अधिकार बना रहा, लेकिन इसके कारणः 1 केवल वह मंच था जो बदल गया था- अब वे विशेष न्यायाधीश के आदेश से उच्च न्यायालय में संशोधन- अधिकार-हेल्ड (प्रति लोकुर, जे।) यह नहीं कहा जा सकता है कि एक वादी को एक प्रतिकूल आदेश को एक उच्च न्यायालय द्वारा संशोधित करने का "अधिकार" है- इसके विपरीत, यदि संशोधित करने के लिए कोई अधिकार है, तो इसे उच्च न्यायालय में निवेश किया जाता है- तथ्यों पर, मजिस्ट्रेट से विशेष न्यायाधीश को आपराधिक मुकदमे के हस्तांतरण ने अभियुक्त- याचिकाकर्ताओं के लिए उपलब्ध पुनरीक्षण की प्रक्रियात्मक सुविधा" को कम नहीं किया - इसने केवल मंच को बदल दिया- याचिकाकर्ताओं को उस मंच को चुनने का कोई अधिकार नहीं है जिसमें अपील दायर करने या अंतर्वर्ती आदेश को संशोधित करने के लिए याचिका दायर करने का अधिकार है।

एक 'के', जो पहले बिहार सरकार के पशुपालन विभाग के निदेशक के रूप में काम कर रहा था, पर राज्य को धोखा देने की साजिश के लिए केंद्रीय जांच ब्यूरो (C.B.I.) द्वारा रांची में विशेष न्यायाधीश की अदालत में मुकदमा चलाया जा रहा था। जाँच के दौरान, यह पता चला कि 'के' ने अपने नाम पर और विभिन्न स्थानों पर अपने बच्चों के नाम पर भारी चल और अचल संपत्ति अर्जित की थी। और इसलिए उनके बच्चे पर इस जाँच से उत्पन्न हुए मामले में भी मुकदमा चलाया गया।

जाँच के दौरान आगे यह पता चला कि याचिकाकर्ताओं-'के' के बच्चों को भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा मिली थी।

यह संदेह था कि ये प्रेषण विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए पशुपालन घोटाले में शामिल कुछ व्यक्तियों द्वारा तय की गई राशि थी . यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने एफईआरए की धारा सी 9 (1) (ए) और (बी) और 64 (2) के प्रावधानों का उल्लंघन किया था, और खुद को उक्त अधिनियम की धारा 56 के तहत मुकदमा चलाने के लिए उत्तरदायी बनाया था।

तदनुसार प्रवर्तन निदेशक ने एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 के तहत संज्ञान लेने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट रांची के समक्ष याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मामले दायर किए। हालांकि, प्रवर्तन निदेशक ने महसूस किया कि फेरा मामलों में कई अपराधी चारा घोटाले के मामलों में विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित मामलों में भी आरोपी थे और निर्भर दस्तावेज और जिन गवाहों से पूछताछ की जानी थी, वे सामान्य थे। इसलिए निदेशक ने राज्य सरकार को पत्र लिखकर इन मामलों की सुनवाई उसी अदालत द्वारा करने की मांग की।

तदनुसार, झारखंड सरकार के विधि सचिव ने उच्च न्यायालय के महापंजीयक को पत्र लिखा। इस बीच, 1.6.2000 से, फेरा को विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999- फ़ेमा द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था। यद्यपि फेमा की धारा 49 (4) को ध्यान में रखते हुए, फेमा को निरस्त और फेमा द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था, फेमा के तहत किए गए सभी अपराधों को फेमा के प्रावधानों द्वारा नियंत्रित किया जाना जारी है, जैसे कि उस अधिनियम को निरस्त नहीं किया गया था।

झारखंड उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय ने 25.4.2002 को विशेष न्यायाधीश, सी. बी. आई. पशुपालन घोटाले के मामलों को

फेमा, 1999 तदनुसार झारखंड राज्य द्वारा 17.5.2002 को एक अधिसूचना जारी की गई थी, जिसमें विशेष न्यायाधीश सीबीआई (एएचओ घोटाले के मामलों) को फेमा के तहत मामलों की सुनवाई करने का अधिकार दिया गया था। इसके बाद याचिकाकर्ताओं ने दिनांक 17.5.2002 की अधिसूचना को रद्द करने के लिए आपराधिक रिट याचिकाएं दायर कीं। रिट याचिकाओं को उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दिया गया था और इसलिए वर्तमान विशेष अनुमति याचिकाएं (आपराधिक).

याचिकाकर्ताओं ने इस न्यायालय के समक्ष तर्क दिया कि फेरा/ फ़ेमा के अधीन अपीलार्थियों के अभियोजन का मजिस्ट्रेट के न्यायालय से विशेष न्यायालय में अंतरण गैरकानूनी था, क्योंकि विवादित अंतरण ऐसे न्यायालय को किया जा रहा था जिसे अपराध का विचारण करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था; कि जिन अपराधों के लिए एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 के अधीन याचिकाकर्ताओं पर मुकदमा चलाया जा रहा था, उनके लिए दंड 7 वर्ष के कारावास से अधिक नहीं था; कि दंड 7 वर्ष से कम होने के कारण, मामला प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण योग्य था; और इसलिए राज्य सरकार एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 के अधीन अभियोजन को मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय से विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में अंतरण करने के लिए सक्षम नहीं थी; और इसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ताओं को अपील करने के एक अधिकार से वंचित कर दिया गया। यह भी तर्क दिया गया था कि सीआरपीसी की धारा 407 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना उच्च न्यायालय द्वारा मामलों के हस्तांतरण को प्रभावित नहीं किया जा सकता था, और इसलिए मामले के हस्तांतरण के विवादित आदेश कानून में खराब थे। विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज करते हुए, न्यायालय ने कहाः

<u>गोखले, न्यायाधीश के अनुसार:</u>

1. सी.आर.पी.सी की पहली अनुसूची अपराधों के वर्गीकरण से संबंधित है। इसका भाग-1 भारतीय दंड संहिता के अधीन. अपराधों से संबंधित है, भाग-II से संबंधित है अन्य कानूनों के विरुद्ध अपराधों का वर्गीकरण, जिसमें एफ. ई. आर. ए. जैसे कानूनों के अधीन अपराध शामिल होंगे।

कमलेश कुमार
बनाम
झारखंड राज्य 267

याचिकाकर्ताओं पर फेरा की धारा 56 के तहत मुकदमा चलाया जा रहा था, जिसमें अधिकतम सजा जो दी जा सकती थी वह सात साल तक थी। इस भाग- II की दूसरी प्रविष्टि में यह निर्धारित किया गया था कि ऐसे अपराध प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण योग्य थे, बशर्ते कि वे अपराध संज्ञेय अपराध थे। फेरा की धारा 62 ने धारा 56 के तहत अपराध को गैर- संज्ञेय बना दिया। इसके अलावा। एफ. ई. आर. ए. की धारा 61 (1) में कहा गया है कि मजिस्ट्रेट के लिए धारा 56 के तहत आवश्यक सजा देना 'विधिसम्मत होगा'। इसमें यह नहीं कहा गया है कि अकेले मजिस्ट्रेट को आवश्यक सजा देने का अधिकार है, ऐसे मामले में कार्यवाही को उसके न्यायालय से स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। यह प्रावधान ए. आर के मामले में एक जैसा नहीं है। अंतू ने कहा कि आपराधिक कानून संशोधन 1952 अधिनियम की धारा 7 (1) के तहत अपराध 'केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा विचारण योग्य' था। तत्काल मामले में मजिस्ट्रेट के लिए धारा 61 के तहत अपराधों का मुकदमा चलाना केवल वैध था, लेकिन मजिस्ट्रेट का न्यायालय अंतुले के मामले की तरह अन्य अधिकार क्षेत्र का न्यायालय नहीं था। अपराध गैर-संज्ञेय था, और इसलिए यह अनिवार्य नहीं था कि मुकदमा केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा चलाया जाना चाहिए था। इस प्रकार याचिकाकर्ता यह दावा नहीं कर सका कि मजिस्ट्रेट के पास अपराध की सुनवाई करने का विशेष अधिकार क्षेत्र था और राज्य मामले को सत्र न्यायाधीश को स्थानांतरित नहीं कर सकता था। इसे ध्यान में रखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट के न्यायालय के पास एफ. ई. आर. ए. के प्रावधानों के उल्लंघन से संबंधित मामलों की सुनवाई करने का विशेष अधिकार क्षेत्र था और उन मामलों को विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था। वर्तमान मामले में अभियुक्त आम थे, कई गवाह आम होंगे, और इसी तरह उनके साक्ष्य भी आम होंगे । उच्च न्यायालय के पास ऐसी स्थिति में स्थानांतरण करने की प्रशासनिक शक्ति थी।
[पैरा 17] [283-बी-एच; 284-ए]

1.2. उच्च न्यायालय के पास धारा 407 सी.आर.पी.सी के तहत मामले और अपील जो अनिवार्य रूप से एक न्यायिक शक्ति है को स्थानांतरित करने की शक्ति है।

धारा 407 (1) (सी) सी.आर.पी.सी. यह निर्धारित करता है कि, जहां यह पक्षों या गवाहों की सामान्य सुविधा के लिए होगा, या जहां यह न्याय के उद्देश्यों के लिए समीचीन था, उच्च न्यायालय ऐसे मामले को सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि उच्च न्यायालय में भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उपलब्ध अधीक्षण की अपनी प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करके मामलों को स्थानांतरित नहीं कर सकता है।
[पैरा 19] [284-जी-एच; 285-ए]

ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक और अन्य । 1988 (2) एससीसी 602: डी 1988 (1) सप्लीमेंट। एससीआर 1-लागू नहीं होता है। ए.एस. एलएमपीईएक्स लिमिटेड और अन्य. बनाम. दिल्ली उच्च न्यायालय और अन्य 107.

(2003) दिल्ली लॉ टाइम्स 734- खारिज।

रणवीर यादव बनाम बिहार राज्य **1995 (4) एससीसी 392:1995 (2) एससीआर 826- पर भरोसा किया गया।**

प्रणब कुमार मित्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य । 1959 सप्लिमेंट 1 एससीआर 63; सूरज प्रकाश सेठ और एक अन्य बनाम. आर.के. गुमानी और एक अन्य **1975 एम.एच.एल.जे 588** और महेंद्र सिंह बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय और अन्य । 2009 (151) कंपनी **मामले 485** (दिल्ली)- निर्दिष्ट।

लोकुर, जे के अनुसार । [सहमति]

आयोजित:
स्थानांतरण की अधिसूचना की वैधता (विशेष न्यायाधीश को)
1. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 और एफ. ई. आर. ए. की धारा ~ 1 के पठन से यह स्पष्ट है कि मजिस्ट्रेट को एफ. ई. आर. ए. के प्रावधानों के उल्लंघन से संबंधित मामलों की सुनवाई करने के लिए अनन्य अधिकारिता प्रदान नहीं की गई है। अनुपस्थित क्षेत्राधिकार विशिष्टता, में निर्धारित कानून का सिद्धांत *अंतुले* लागू नहीं है और विशेष न्यायाधीश को याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मामले की सुनवाई करने के लिए अधिकार क्षेत्र प्रदान किया जा सकता था।

[पैरा 13] [290-जी-एच]

ए.आर. अंतुले बनाम आर.एस. नायक (1988) 2 एस. सी. सी. 602:1988 (1) पूरक। एससीआर 1-लागू नहीं होता है।

आर.एस. नायक बनाम ए.आर. अंतुले (1984) 2 एस. सी. सी. 183: 1984 (2) एस. सी. आर. 495 और प्रेम चंद गर्ग बनाम आबकारी आयुक्त 1963 सप्लीमेंट (1) एस. सी. आर. 885- निर्दिष्ट।

<u>अपील करने का अधिकार:</u>

2.1. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं के लिए उपलब्ध अपील के अधिकार को मजिस्ट्रेट से विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित करके छीन नहीं लिया जाता है। याचिकाकर्ताओं के पास अपील करने का अधिकार बना हुआ है, लेकिन यह केवल मंच है जो बदल गया है। अब वे विशेष न्यायाधीश के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील कर सकते हैं। इसलिए, ऐसा नहीं है कि याचिकाकर्ताओं के मामले को विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित करके एक उच्च मंच पर अपने मुद्दे को आंदोलन करने के किसी भी अधिकार से वंचित किया जाता है। [पैरा 15] [291-सी-डी]

2.2 यह अब अच्छी तरह से तय किया गया है कि एक वादी को न तो किसी विशेष मंच पर अपील करने का अधिकार है और न ही उसके मामले में किसी विशेष प्रक्रिया का पालन करने पर जोर देने का। यह गंभीरता से आग्रह नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं को अपीलीय मंच के परिवर्तन से पूर्वाग्रह था। [पैरा 16, 20] [291-ई; 292-एफ]

राव शिव बहादुर सिंह बनाम विंध्य प्रदेश राज्य 1953 एस. सी. आर. 118- इसके बाद।

भारत संघ बनाम सुकुमार पाइन **एयर 1966 एससी 1206:1966**
एससीआर 34: मारिया क्रिस्टीना डी सूजा सोडर बनाम अम्रिया जुराना परेरा पिंटो **(1979) 1 एस. सी. सी. 92**; टी. बरई बनाम हेनरी आह हो
(1983) 1 एससीसी 177:1983 (1) एससीआर 905 और मिस राय बहादुर

सेठ श्रीराम दुर्गाप्रसाद बनाम प्रवर्तन निदेशक
(1987) 3 सेक 27:1987 (3) एस. सी. आर. 137-पर सेवानिवृत्त।

स्थानांतरण की प्रक्रियाः

3. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय 'ख' संहिता की धारा 407 के तहत स्थानांतरण की अपनी न्यायिक शक्ति का प्रयोग कर सकता था (यदि ऐसा करने के लिए कहा जाता है) और यह संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत हस्तांतरण की अपनी प्रशासनिक शक्ति का भी प्रयोग कर सकता था, जो उसने किया, जैसा कि झारखंड उच्च न्यायालय के महापंजीयक द्वारा सरकार के सचिव, विधि (ज्यूडी) विभाग, झारखंड सरकार को 6 मई 2002 को जारी पत्र से स्पष्ट है। तथ्य यह है कि एक प्रशासनिक ज़रूरत के लिए, उच्च न्यायालय ने अपनी पूर्ण प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करने का निर्णय लिया है, इस निष्कर्ष पर नहीं पहुंचता है कि मजिस्ट्रेट से विशेष न्यायाधीश को मामले का हस्तांतरण गैरकानूनी था। इस मामले में कार्रवाई की वैधता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता है क्योंकि इस तरह के हस्तांतरण से याचिकाकर्ताओं को कोई पूर्वाग्रह नहीं हुआ है। [पैरा 24] [293-डी-एफ]

रणबीर यादव बनाम बिहार राज्य (1995) 4 एस. सी. सी. 392:**1995 (2) एस. सी. आर. 826-पर निर्भर था।**

पुनरीक्षण का अधिकार :

4. यह नहीं कहा जा सकता है कि एक वादी को ऊपरी अदालत द्वारा प्रतिकूल आदेश को संशोधित करने का "अधिकार" है। इसके विपरीत, यदि मुझे संशोधित करने का कोई "अधिकार" है, तो इसे उच्च न्यायालय में निवेश किया जाता है। जबकि एक उच्चतर न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति वास्तव में इसे एक गंभीर त्रुटि को ठीक करने में सक्षम बनाती है, उस शक्ति का अस्तित्व एक वादी को कोई संबंधित अधिकार प्रदान नहीं करता है। यही कारण है कि यदि मामले के तथ्य और परिस्थितियां अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करने की गारंटी नहीं देती हैं, तो किसी दिए गए मामले में, एक उच्चतर न्यायालय अपनी पुनरीक्षण की शक्ति का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है। यह भी कारण है कि यह सम्मानपूर्वक कहा जाता है कि एक संशोधन एक अधिकार नहीं है, बल्कि केवल एक पक्ष के लिए उपलब्ध एक "प्रक्रियात्मक सुविधा" है।

कमलेश कुमार

बनाम

झारखंड राज्य 271

यदि मामले को इस दृष्टि से देखा जाए, तो मजिस्ट्रेट से विशेष न्यायाधीश को मामले का हस्तांतरण याचिकाकर्ताओं के लिए उपलब्ध इस प्रक्रियात्मक सुविधा को नहीं छीनता है। यह केवल मंच को बदलता है और जैसा कि पहले से ही ऊपर कहा गया है, याचिकाकर्ताओं को मंच चुनने का कोई अधिकार नहीं है जिसमें अपील दायर करने या अंतर्वर्ती आदेश को संशोधित करने के लिए याचिका दायर करने का अधिकार है। [पैरा 27,28] [294-ई-एच; 295-ए]

ए एस इम्पेक्स लिमिटेड बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय 107 (2003) DLT 734- खारिज कर दिया।

महेंद्र सिंह बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय (2009) 151 पूरक केस 485 (दिल्ली) *और एन.जी. शेठ* बनाम. सीबीआई. 8.1. 151 (2008) डीएलटी 89- अनुमोदित।

प्रणब कुमार मित्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य 1959 (1) पूरक एससीआर 63; अकालू अहीर बनाम रामदेव राम (1973) 2 एस. सी. सी. 583: 1974 (1) एस. सी. आर. 130- पर निर्भर है।

मामला कानून संदर्भः

<u>दिए गए निर्णय में बी- गोखले, जे</u>

1988 (1) सप्लीमेंट एससीआर 1	विशिष्ट	पैरा10 (i)
1984 (2) एस. सी. आर. 495	को संदर्भित	पैरा 10 (ii)
1995 (2) एस. सी. आर. 826	पर भरोसा	पैरा 13
1959 सप 1 एस. सी. आर. 63	को संदर्भित	पैरा 15
1975 एम.एच.एल.जे 588	को संदर्भित	पैरा 16
2009 (151) सीसी 485 (दिल्ली)	को संदर्भित	पैरा 18

<u>दिए गए निर्णय - लोकुर, जे.</u>

1988 (1) सप्लीमेंट एस. सी. आर. 1	अनुपयुक्त ठहराया गया	पैरा 4
1984 (2) एस. सी. आर. 495	को संदर्भित	पैरा 5
1963 को निर्दिष्ट सपं. (1) एस. सी. आर. 885	को संदर्भित	पैरा 9

1953 एस. सी. आर.	का अनुसरण किया	पैरा 16
1966 का एस. सी. आर. 34	को संदर्भित	पैरा 17
(1979) 1 एस सी सी 92	पर निर्भर	पैरा 18
1983 (1) एस. सी. आर. 905	पर निर्भर	पैरा 19
1987 (3) एस. सी. आर. 137	पर निर्भर	पैरा 19
1995 (2) एस. सी. आर. 826	पर निर्भर	पैरा 23
1959 (1) सप्लीमेंट एस. सी. आर. 63	पर निर्भर	पैरा 26
1974 (1) एस. सी. आर. 130	पर निर्भर	पैरा 27
107 (2003) डीएलटी 734	पर निर्भर	पैरा 29
(2009) 151 पूरक कैस 485 (दिल्ली)	अनुमोदित	पैरा 31
151 (2008) डीएलटी 89	अनुमोदित	पैरा 31

आपराधिक अपील न्यायनिर्णयः एसएलपी (आपराधिक) सं. 2012 का 6219- 20

रांची में झारखंड उच्च न्यायालय के निर्णय और आदेश दिनांक 19.07.2012 से रिट याचिका आपराधिक सं 2003 का 95 और 112.

शेखर नाफड़े, अनिल कुमार, ए. रोहन सिंह, बोबॉय पोस्तांगबाम, नौईन कुमार, D.P. याचिकाकर्ताओं के लिए सिंह, अनिल कुमार मिश्रा- I।

पी.पी. मल्होत्रा, एएसजी, एम.आर. उत्तरदाताओं के लिए कल्ला, रारिजना नारायण, यासिर रउफ, बी. कृष्ण प्रसाद, सिद्धार्थ पांडा, अशोक माथुर, पार्टिक, जयेश गौरव, गोपाल प्रसाद।

न्यायालय के निर्णय एच के गोखले, न्यायाधीश द्वारा दिए गए थे-

1. ये विशेष अनुमति याचिकाएं (आपराधिक) दिनांक 19.7.2012 के निर्णय और आदेश को चुनौती देने का प्रयास करती हैं, जिसके तहत झारखंड उच्च न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश ने दो रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया जो श्री कमलेश कुमार और तीन अन्य लोगों द्वारा दायर 2003 की याचिका संख्या 95 और 112, एक डॉ. के.एम के प्रसाद और सभी बच्चे जो पहले बिहार सरकार में पशुपालन विभाग के निदेशक के रूप में काम कर चुके हैं द्वारा दायर रिट दायर की गई थी ।

कमलेश कुमार

बनाम

झारखंड राज्य 273

[एच.एल. गोखले, जे]

उन पर विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 (संक्षेप में फेरा) के प्रावधानों के तहत मुकदमा चलाया जा रहा है और उन मामलों को चारा घोटाले के मामलों की सुनवाई करने वाले विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित कर दिया गया है। उपर्युक्त निर्दिष्ट आपराधिक रिट याचिकाओं में उन्होंने उन मामलों को विशेष न्यायालय में स्थानांतरित करने को यह तर्क देते हुए चुनौती दी थी कि स्थानांतरण विभिन्न आधारों पर आदेश ख़राब था, उनमें से प्रमुख यह था कि राज्य सरकार को विशेष न्यायाधीश को फेरा के तहत इन मामलों की सुनवाई करने के लिए अधिकृत करने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं था। उन आपराधिक रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया गया है, और इसलिए ये विशेष अनुमति याचिकाएं (आपराधिक) दायर की गई हैं।

इस आपराधिक याचिका का नेतृत्व करने वाले तथ्य इस प्रकार हैं:-

2 ऊपर उल्लेखित याचिकाकर्ताओं के पिता डॉ. के.एम. प्रसाद जो पहले बिहार सरकार के पशुपालन विभाग के निदेशक के रूप में काम कर रहे थे पर केंद्रीय जांच ब्यूरो (सी.बी.आई.) द्वारा कुछ अन्य लोगों के साथ पर मुकदमा चलाया जा रहा है। 1980- 90 के दौरान दवाओं की खरीद के लिए कथित रूप से जारी किए गए फर्जी आवंटन पत्रों के आधार पर राज्य सरकार को Rs.7,09,92,000/- की सीमा तक धोखा देने की साजिश के लिए रांची में विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में यह दावा किया जाता है कि नकली आपूर्ति आपूर्तिकर्ताओं द्वारा की गई थी, और इस तरह के नकली आवंटन के लिए निकाले गए धन का आरोपी व्यक्तियों द्वारा दुरुपयोग किया गया था।

3. जांच के दौरान यह महसूस किया गया कि में शामिल राशि बहुत अधिक थी, अर्थात Rs.19,81,66,460 लगभग, और आरोपी डॉ के.एम. प्रसाद ने अपने स्वयं के नाम पर और विभिन्न स्थानों पर अपने बच्चों और अन्य लोगों के नाम पर भारी चल और अचल संपत्ति अर्जित की थी। इसलिए इस जांच से उत्पन्न हुए मामले में उपरोक्त डॉ के.एम प्रसाद और उनके बच्चों पर भी मुकदमा चलाया गया था, और CBI द्वारा पहले ही उन पर आरोप लगाए जा चुके हैं।

उनके खिलाफ सीबीआई और मामले रांची में विशेष न्यायाधीश सीबीआई की अदालत में मामला लंबित हैं।

4. जाँच के दौरान यह भी पता चला कि श्री कमलेश कुमार और तीन अन्य, डॉ. के.एम प्रसाद के बच्चे को अमेरिकी डॉलर 3,15,000 और ब्रिटिश £1000 से अधिक की भारी मात्रा में विदेशी मुद्रा प्राप्त हुई थी। यह संदेह था कि ये प्रेषण वास्तव में वास्तविक उपहार नहीं थे जैसा कि उनके द्वारा दावा किया गया था, बल्कि पशु पालन घोटाले में शामिल कुछ व्यक्तियों द्वारा फेरा के प्रावधानों का उल्लंघन करते हुए राशि की व्यवस्था की गई थी।

यह आरोप लगाया गया था कि उन्होंने एफईआरए की धारा 9 (1) (ए) और (बी) और 64 (2) के प्रावधानों का उल्लंघन किया था, और खुद को उक्त अधिनियम की धारा 56 के तहत मुकदमा चलाने के लिए उत्तरदायी बनाया था।

5. प्रवर्तन निदेशक ने तदनुसार एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 के तहत संज्ञान लेने के लिए मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट रांची के समक्ष याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मामले दायर किए। हालांकि, प्रवर्तन निदेशक ने महसूस किया कि फेरा मामलों में कई अपराधी उन मामलों में भी आरोपी थे जो चारा घोटाले के मामलों में विशेष न्यायाधीश के समक्ष लंबित थे, और जिन दस्तावेजों पर भरोसा किया गया था और जिन गवाहों से पूछताछ की जानी थी, वे सामान्य थे। इसलिए निदेशक ने 25.1.2002 को राज्य सरकार को पत्र लिखकर इन मामलों की सुनवाई उसी न्यायालय द्वारा करने का अनुरोध किया। तदनुसार, झारखंड सरकार के विधि सचिव ने उच्च न्यायालय के महापंजीयक को 2.3.2002 और 25.4.2002 को पत्र लिखा। तत्पश्चात, झारखंड उच्च न्यायालय के पूर्ण न्यायालय ने 25.4.2002 को विशेष न्यायाधीश, सी. बी. आई. पशुपालन घोटाले के मामलों को फेमा, 1999 के मामलों की सुनवाई करने के लिए सशक्त बनाने के लिए एक प्रस्ताव पारित किया। (इसका कारण यह है कि इस बीच, 1.6.2000 से, फेरा को विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999- फ़ेमा द्वारा प्रतिस्थापित किया गया था) तदनुसार झारखंड राज्य द्वारा 17.5.2002 को एक अधिसूचना जारी की गई थी, जिसमें विशेष न्यायाधीश सीबीआई (एएचओ घोटाले के मामलों) को फेमा के तहत मामलों की सुनवाई करने का अधिकार दिया गया था।

उस अधिसूचना के अनुसरण में, मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट, रांची के समक्ष 23.5.2002 को दायर शिकायत को दिनांक 31.5.2002 के आदेश द्वारा विद्वत अतिरिक्त न्यायिक आयुक्त सह

विशेष न्यायाधीश सीबीआई (एएचओ घोटाला मामले) रांची की अदालत में सुनवाई के लिए स्थानांतरित कर दिया गया था।

6. इसने याचिकाकर्ताओं को दिनांक 17.5.2002 की अधिसूचना को रद्द करने के लिए उपरोक्त निर्दिष्ट आपराधिक रिट याचिकाएं दायर करने के लिए प्रेरित किया। रांची में झारखंड उच्च न्यायालय के विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपने निर्णय और दिनांक 19.7.2012 के आदेश द्वारा उक्त रिट याचिकाओं को खारिज कर दिया। यह वह आदेश है जिसे वर्तमान विशेष अवकाश याचिकाओं में चुनौती दी गई है
(आपराधिक)।

7. झारखंड सरकार द्वारा दिनांक 17.5.2002 को जारी अधिसूचना इस प्रकार हैः-

"झारखंड सरकार
कानून (न्याय) विभाग
अधिसूचना
रांची दिनांक 17 मई, 2002

श्री प्रभु तिवारी, विशेष न्यायाधीश, सीबीआई (ए.एच.डी घोटाले के मामले) रांची को फेमा, 1979 के मामलों के निपटान के लिए अधिकृत किया जा रहा है। पत्र ख्या3449/एपीपीटीटी दिनांक 06/05/2002 झारखंड उच्च न्यायालय, रांची के आलोक में ।

राज्यपाल (प्रशांत कुमार) के आदेश से
सचिव, सरकारी कानून (न्याय) विभाग
एफ झारखंड, रांची

मेमो नं. 1- ए/कोर्ट-गाथन -103/2001-1111/जे रांची दिनांक 17 मई 2002

इसे अगले राज्य राजपत्र में प्रकाशित करने के लिए, अधीक्षक, राज्य प्रेस, पोस्ट-डोरंडा, रांची को कॉपी भेजें ।

सचिव
विधि(न्याय) भाग
झारखंड, रांची

यह अधिसूचना झारखंड उच्च न्यायालय के महापंजीयक द्वारा दिनांक 6.5.2002 को जारी पत्र के आलोक में जारी की गई थी, जो इस प्रकार हैः-

"कार्यालयः-501449
रेसः-503024
फैक्स नंबरः 0651-501114
नं. 3449/एपीपीटी
दिनांक, रांची 061/05/2002

इबरार *हसन*

महापंजीयक
उच्च न्यायालय
रांची, झारखंड

सेवा में,
सचिव (न्यायिक) विभाग,
झारखंड सरकार, रांची

महोदय,
आपके पत्र सं. 1/ए/कोर्ट- एस्टाब-103/2001 जे 531 दिनांक 02/03/2002, मुझे यह कहने का निर्देश दिया गया है कि न्यायालय ने श्री प्रभु तिवारी, विशेष न्यायाधीश, सी.बी.आई. (ए. एच. ओ. घोटाले के मामले) को रांची में विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999 के तहत मामलों की सुनवाई करने की शक्तियां निहित की जाएं।

मुझे आगे यह कहने का निर्देश दिया गया है कि चूंकि इस शक्ति का निहित होना 31 मई, 2002 से पहले प्रभावी होना है, इसलिए इस आशय की तत्काल अधिसूचना जारी की जा सकती है।

आपके विश्वासी

रजिस्ट्रार जनरल
06. 05. 2002

"याचिकाकर्ताओं की ओर से प्रस्तुतियाँ-

8. सबसे पहले याचिकाकर्ताओं की ओर से यह प्रस्तुत किया गया था कि एफ. ई. आर. ए. आई./ एफ. ई. एम. ए. के तहत अपीलार्थियों के अभियोजन का मजिस्ट्रेट के न्यायालय से विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में स्थानांतरण गैरकानूनी था, क्योंकि विवादित स्थानांतरण एक ऐसे न्यायालय में किया जा रहा था जिसे अपराध का मुकदमा चलाने का कोई अधिकार नहीं था। इस संदर्भ में, याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री शेखर ए नाफडे ने यह प्रस्तुत किया कि जिन अपराधों के लिए याचिकाकर्ताओं पर फेरा की धारा 56 के तहत मुकदमा चलाया जा रहा था, उनके लिए सजा 7 साल के कारावास से अधिक नहीं थी। चूँकि हम धारा 56 की उपधारा (1) से संबंधित हैं, हम उक्त उपधारा को पुनः प्रस्तुत कर सकते हैं। हम इस स्तर पर यह नोट कर सकते हैं कि यद्यपि फेमा की धारा 49 (4) को ध्यान में रखते हुए 1.6.2000 से फेमा द्वारा निरसित और प्रतिस्थापित किया गया था, फिर भी फेमा के तहत किए गए सभी अपराध फेरा के प्रावधानों द्वारा शासित होते रहते हैं, जैसे कि उस अधिनियम को निरसित नहीं किया गया था। एफ. ई. आर. ए. की यह धारा 56 (1) निम्नानुसार हैः-

"56 अपराध और अभियोजन- (1) इस अधिनियम के अधीन न्यायनिर्णायक अधिकारी द्वारा दंड के किसी अधिनिर्णय पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, यदि कोई व्यक्ति इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी का [धारा 13, धारा [18, धारा 18 क की उपधारा] (1) के खंड द (क), धारा 19 की उपधारा (1) के खंड (क), धारा 44 की उपधारा (2) और धारा 57 और 58] के अतिरिक्त, या उसके अधीन किए गए किसी नियम, निदेश या आदेश का उल्लंघन करता है, तो वह न्यायालय द्वारा दोषी ठहराए जाने पर दंडनीय होगा-

(i) किसी अपराध के मामले में, जिसमें एक लाख रुपए से अधिक की राशि या मूल्य शामिल है, उस अवधि के कारावास के साथ, जो छह महीने से कम नहीं होगी, लेकिन जो सात साल तक हो सकती है और जुर्माने के साथः बशर्ते कि न्यायालय किसी विशेष कारण के लिए कारावास या किसी अन्य मामले में, जिसकी अवधि तीन साल से कम हो सकती है, दोनों के लिए कारावास या जुर्माने के साथ दंडनीय होगा।

9. इसके बाद यह प्रस्तुत किया गया कि सजा 7 वर्ष से कम होने के चलते जैसा कि सी.आर.पी.सी. की पहली अनुसूची के भाग-II की दूसरी प्रविष्टि के तहत प्रदान किया गया है, ऐसे अपराध जो तीन वर्ष और उससे अधिक के कारावास से दंडनीय हैं, लेकिन सात वर्ष से अधिक नहीं हैं, और संज्ञेय और गैर-जमानती अपराध हैं, प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा विचारणीय हैं।

इसलिए, राज्य सरकार मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट के न्यायालय से विशेष न्यायाधीश के न्यायालय में एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 के तहत अभियोजन को स्थानांतरित करने के लिए सक्षम नहीं थी। ऐसा इसलिए है क्योंकि यदि इसकी अनुमति दी जाती है तो इसके परिणामस्वरूप याचिकाकर्ता को अपील करने के अधिकार से वंचित कर दिया जाएगा।

10. (i) रिलायंस को भी इस मामले में न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले पर इस प्रस्ताव के समर्थन में रखा गया था, ए एस इम्पेक्स लिमिटेड बनाम आर.एस. नायक और अन्य 1988 (2) की धारा 602 में और विशेष रूप से पैराग्राफ 55,56,77,78 और 91 में यह प्रस्तुत करने के लिए कि यह अंतरण अपीलार्थियों के अपील करने के अधिकार को कम कर देगा। याचिकाकर्ता ए.आर के खिलाफ अभियोजन का स्थानांतरण अंत में, विशेष न्यायाधीश के न्यायालय से लेकर बॉम्बे उच्च न्यायालय तक, याचिकाकर्ता के मौलिक अधिकारों का उल्लंघन किया गया था, और इसलिए, इसके बिना अधिकार क्षेत्र और शून्य आयोजित किया गया था । यह अभिनिर्धारित किया गया था कि विशेष न्यायाधीश के निर्णय के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील करने का याचिकाकर्ता का अधिकार इस तरह के स्थानांतरण द्वारा छीन लिया गया था।

(ii) ए. एस. के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की एक खंड पीठ के फैसले पर रिलायंस को भी इस ओर से रखा गया था। ए.एस इम्पेक्स लिमिटेड और अन्य v. दिल्ली उच्च न्यायालय और अन्य, 107 (2003) दिल्ली लॉ टाइम्स 734 में रिपोर्ट किया गया। उस मामले में, न्यायालय परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत दायर मामलों को मजिस्ट्रेट के न्यायालयों से अतिरिक्त सत्र न्यायाधीशों के न्यायालयों में स्थानांतरित करने के लिए उच्च न्यायालय द्वारा पारित प्रशासनिक आदेश से संबंधित था। उच्च न्यायालय ने ए. आर. अंतुले(सुप्रा) पर भरोसा किया और अभिनिर्धारित किया कि चेकों के अनादर से निपटने के लिए, मेट्रोपॉलिटन मजिस्ट्रेट या न्यायिक मजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी को परक्राम्य की धारा 138 के तहत अपराधों का मुकदमा चलाने के लिए एक विशेष अधिकार क्षेत्र प्रदान किया गया था।

इन्स्ट्रूमेंट एक्ट 1881, और उस अधिकारिता के इन मामलों को सत्र न्यायालयों में स्थानांतरित करके दूर नहीं किया जा सकता था।

11. यह भी प्रस्तुत किया गया था कि मामलों का हस्तांतरण सी.आर.पी.सी. की धारा 407 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना उच्च न्यायालय द्वारा प्रभावित नहीं किया जा सकता था, और मामलों के हस्तांतरण के 8 विवादित आदेश इसलिए कानून में खराब थे।

<u>उत्तरदाताओं की ओर से जवाबः-</u>

12. याचिकाकर्ता के लिए विद्वान वकील की दलीलों को श्री पी पी मल्होत्रा द्वारा प्रतिवाद किया गया था। मल्होत्रा, अतिरिक्त सॉलिसिटर जनरल उत्तरदाताओं की ओर से पेश ने सबसे पहले हमारा ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया कि अंतुले के मामले में, जैसा कि उस निर्णय के पैराग्राफ 19 में दर्ज है, याचिकाकर्ता पर आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम 1952 की धारा 7 (1) के तहत मुकदमा चलाया जा रहा था, और उक्त अधिनियम की धारा 7 (1) विशेष रूप से अनिवार्य किया कि ऐसे मामलों में अपराधों का मुकदमा केवल एक विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा।

13. श्री मल्होत्रा ने प्रस्तुत किया कि जब कानून ने इस तरह का एक विशिष्ट प्रावधान किया था, तो अभियोजन को निर्दिष्ट अदालत से वापस नहीं लिया जा सकता था और यहां तक कि उच्च न्यायालय को भी स्थानांतरित किया जा सकता था।

यह इस संदर्भ में था कि श्री ए.आर. अंतुले को पूर्वाग्रह का सामना करना पड़ा था क्योंकि उच्च न्यायालय में अपील करने का उनका अधिकार प्रभावित होगा। वर्तमान मामले में, ऐसा कोई विशिष्ट प्रावधान नहीं था कि अपराध की सुनवाई केवल मजिस्ट्रेट द्वारा की जाएगी। श्री मल्होत्रा ने अपनी दलीलों के समर्थन में इस न्यायालय के एक विशिष्ट निर्णय की ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। रणवीर यादव बनाम बिहार राज्य ने 1995 (4) एस. सी. सी. 392 में रिपोर्ट की जहां ए आर अंतुले (उपर्युक्त) में कानूनी प्रस्ताव के रूप में कहा गया है, को इसके पैराग्राफ 14 में समझाया गया है। रणवीर यादव (ऊपर) में यह न्यायालय मामलों को स्थानांतरित करने के लिए उच्च न्यायालय की प्रशासनिक शक्ति से संबंधित था। स्थानांतरण के आदेश को बरकरार रखते हुए, इस न्यायालय ने इसके पैराग्राफ 14 में यह टिप्पणी कीः-

"14. अब ए. आर. अंतूले मामले पर आते हुए हम पाते हैं कि बहुमत निर्णय में निर्धारित विधि के सिद्धांत, जिन पर श्री जेठमलानी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया के यहाँ लागू होने का कोई तरीका नहीं है।

इस बारे में प्रश्न उठे कि क्या (i) उच्च न्यायालय आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम, 1952 (संक्षेप में "1952 अधिनियम") के अनुसार उसके अधीन गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारण योग्य मामले को दूसरे न्यायालय को हस्तांतरित कर सकता है, जो विशेष न्यायालय नहीं था और (ii) विशेष न्यायालय के समक्ष लंबित मामले को उच्च न्यायालय को स्थानांतरित करने का उच्चतम न्यायालय का पूर्व आदेश वैध और उचित था? दोनों प्रश्नों का नकारात्मक उत्तर देते हुए विद्वान न्यायाधीशों ने बहुमत का दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा कि (i) 1952 के अधिनियम की धारा 7 (1) ने एक ऐसी शर्त बनाई जो उक्त अधिनियम की धारा 6 (1) के तहत अपराधों के विचारण के लिए अनिवार्य थी। शर्त यह थी कि दंड प्रक्रिया संहिता या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी उक्त अपराध का विचारण केवल विशेष न्यायाधीशों द्वारा किया जाएगा। अतः व्यक्त शर्तों द्वारा इसने संहिता में अंतर्विष्ट मामलों को किसी अन्य न्यायालय को अंतरित करने का अधिकार छीन लिया जो विशेष न्यायालय नहीं था और यह संहिता की धारा 406 और 407 में किसी बात के होते हुए भी था और (ii) उच्चतम न्यायालय के मामले को उच्च न्यायालय को अंतरित करने का पूर्व आदेश विधि द्वारा प्राधिकृत नहीं था, अर्थात् 1952 अधिनियम की धारा 7 (1) और उच्चतम न्यायालय अपने निर्देश से बंबई उच्च न्यायालय को किसी ऐसे मामले का विचारण करने के लिए अधिकारिता प्रदान नहीं कर सका जिसके लिए उसके पास 1952 अधिनियम की योजना के अधीन ऐसी अधिकारिता नहीं थी। जैसा कि वर्तमान मामले में 5वां न्यायालय संहिता के तहत सत्र परीक्षण करने के लिए सक्षम था, उस न्यायालय को अधिकार क्षेत्र प्रदान करने वाले स्थानांतरण के आदेश और उसके बाद के मुकदमे को कानून में खराब नहीं कहा जा सकता है।

(जोर दिया गया)

14. याचिकाकर्ताओं के लिए प्रस्तुतियों में से एक यह था कि चूंकि धारा 56 (1) के तहत अपराध दंडनीय हैं एक अवधि के लिए कारावास जो केवल सात वर्ष तक बढ़ सकता है, वे केवल प्रथम श्रेणी मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण योग्य हैं। । श्री मल्होत्रा ने कहा कि ऐसा होगा यदि अपराध एच.एल की पहली अनुसूची के भाग- II की दूसरी प्रविष्टि के अनुसार संज्ञेय हैं। वर्तमान मामले में, अपराध एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 के तहत गैर- संज्ञेय थे, और याचिकाकर्ताओं पर इसके तहत मुकदमा चलाया जा रहा था। एफ. ई. आर. ए. की धारा 62 ने धारा 56 के तहत अपराधों को गैर- संज्ञेय अपराधों के रूप में दंडनीय बनाया था। एफ. ई. आर. ए. की धारा 62 इस प्रकार हैः-

"62. कुछ अपराध गैर- संज्ञेय होने चाहिए दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में किसी बात के होते हुए भी, धारा 45 और उपबंधों के अधीन रहते हुए, धारा 56 के अधीन दंडनीय अपराध को उस संहिता के अर्थ के भीतर असंज्ञेय समझा जाएगा।

<u>प्रतिद्वंद्वी प्रस्तुतियों पर विचार</u>

15. याचिकाकर्ता की ओर से यह प्रस्तुत किया गया था कि ए आर अंतुले (ऊपर) प्रस्तुतियों में से एक को स्वीकार कर लिया गया है, यह था कि अपील दायर करने का उनका अधिकार प्रभावित होगा। श्री मल्होत्रा ने बताया कि वर्तमान मामले में ऐसी स्थिति पैदा नहीं होगी। विशेष न्यायाधीश के फैसले के खिलाफ निश्चित रूप से उच्च न्यायालय में अपील की जाएगी। यह हमेशा तर्क दिया जाएगा कि यदि अभियोजन मजिस्ट्रेट के न्यायालय के समक्ष किया जाता है, तो सत्र न्यायालय में अपील की जाएगी, और फिर उच्च न्यायालय में एक पुनरीक्षण उपलब्ध होगा। इस प्रकार मामले को मजिस्ट्रेट के न्यायालय से सत्र न्यायाधीश को स्थानांतरित करने से याचिकाकर्ता के पुनरीक्षण का लाभ उठाने का अवसर प्रभावित होगा। श्री मल्होत्रा ने हालांकि बताया कि उच्च न्यायालय में अपील दायर करने के अधिकार से अलग संशोधन दायर करने का कोई अधिकार नहीं है। याचिकाकर्ता यह दावा नहीं कर सकता है कि उसने उस मामले में कोई पूर्वाग्रह झेला है, क्योंकि पुनरीक्षण दायर करने का कोई निहित अधिकार नहीं था। इस प्रस्ताव के समर्थन में उन्होंने प्रणबकुमार मित्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य और अन्य में इस न्यायालय की संविधान पीठ के फैसले के निम्नलिखित पैराग्राफ पर भरोसा किया

"हमारी राय में, संविधिक प्रावधानों के अभाव में, पुनरीक्षण में आवेदन को लागू करने के संदर्भ में, जैसा कि आपराधिक अपीलों के संबंध में धारा 431 में हैं, उच्च न्यायालय को संहिता की धारा 439 द्वारा निहित अपनी पुनरीक्षण अधिकारिता का प्रयोग करते हुए ऐसे आदेश पारित करने की शक्ति है जो उसे उपयुक्त और उचित लगें। वास्तव में, यह एक विवेकाधीन शक्ति है जिसका उपयोग न्याय की सहायता के लिए किया जाना चाहिए। उच्च न्यायालय किसी मामले में अपने पुनरीक्षण अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करेगा या नहीं, यह उस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करना चाहिए। संहिता की धारा 439 द्वारा उसमें निहित उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्तियां, धारा 435 के साथ पठित, वादी में कोई अधिकार पैदा नहीं करती हैं, लेकिन केवल यह देखने के लिए उच्च न्यायालय की शक्ति का संरक्षण करती हैं कि न्याय आपराधिक न्यायशास्त्र के मान्यता प्राप्त नियमों के अनुसार किया जाता है, और यह कि अधीनस्थ आपराधिक न्यायालय अपनी अधिकारिता से अधिक नहीं हैं, या संहिता द्वारा उनमें निहित अपनी शक्तियों का दुरुपयोग नहीं करते हैं। दूसरी ओर, जैसा कि पहले से ही संकेत मिलता है, अपील का अधिकार एक वैधानिक अधिकार है जिसे अदालतों द्वारा मान्यता दी जानी चाहिए, और अपील करने के अधिकार को, जहां मौजूद है, यहां तक कि उच्च न्यायालय की विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग करते हुए भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

16. श्री मल्होत्रा ने आगे बताया कि उच्च न्यायालयों द्वारा इस दृष्टिकोण का पालन किया गया था, और संदर्भ के लिए उन्होंने सूरज प्रकाश सेठ और एक अन्य बनाम आर.के. गुरनानी में बॉम्बे हाईकोर्ट की डिवीजन बेंच के फैसले का उल्लेख किया और एक अन्य ने 1975 एम.एच.एल.जे 588 में रिपोर्ट किया, जहां प्रस्ताव पी.के में निर्धारित किया था। समर्थन में पी.के. मित्र (ऊपर) को संदर्भित किया गया था।

उच्च न्यायालय ने पैराग्राफ 15……………..*में टिप्पणी की जो इस प्रकार है:-*

"15. .. ... हालाँकि, हम जिस बिंदु पर जोर देना चाहते हैं, वह यह है कि कार्यवाही का एक पक्ष अधिकार के मामले के रूप में नहीं हो सकता है निचली अदालत द्वारा पारित किसी भी आदेश के संशोधन के लिए इस अदालत में आते हैं, लेकिन यह व्यवहार का विषय है कि इस तरह के आवेदनों को इस अदालत द्वारा समीचीनता के मामले के रूप में स्वीकार किया जाता है। लेकिन किसी भी पक्ष को प्रक्रिया या व्यवहार में कोई निहित अधिकार नहीं है।

17. सी.आर.पी.सी की पहली अनुसूची अपराधों के वर्गीकरण से संबंधित है। इसका भाग-1 भारतीय दंड संहिता के तहत अपराधों से संबंधित है, भाग-II अन्य कानूनों के खिलाफ अपराधों के वर्गीकरण से संबंधित है, जिसमें एफ. ई. आर. ए. जैसे कानूनों के तहत अपराध शामिल होंगे। याचिकाकर्ताओं पर फेरा की धारा 56 के तहत मुकदमा चलाया जा रहा था, जिसमें अधिकतम सजा जो दी जा सकती थी सात साल तक थी। इस भाग- II की दूसरी प्रविष्टि में यह निर्धारित किया गया था कि ऐसे अपराध प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा विचारण योग्य थे, बशर्ते कि वे अपराध संज्ञेय अपराध थे। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, एफ. ई. आर. ए. की धारा 62 ने धारा 56 के तहत अपराध को असंज्ञेय संज्ञेय बना दिया। इसके अलावा, एफ. ई. आर. ए. की धारा 61 (1) में कहा गया है कि मजिस्ट्रेट के लिए धारा 56 के तहत आवश्यक सजा देना 'विधिसम्मत होगा'। इसमें यह नहीं कहा गया है कि अकेले मजिस्ट्रेट को आवश्यक सजा देने का अधिकार है, ऐसे मामले में कार्यवाही को उसके न्यायालय से स्थानांतरित नहीं किया जा सकता है। यह प्रावधान ए.आर के मामले में एक जैसा नहीं है। ए आर अंतुले (उपर्युक्त) जहां आपराधिक विधि संशोधन 1952 अधिनियम की धारा 7 (1) के अधीन अपराध 'केवल विशेष न्यायाधीश द्वारा विचारण योग्य' था, तत्काल मामले में मजिस्ट्रेट के लिए धारा 61 के तहत अपराधों का मुकदमा चलाना केवल वैध था, लेकिन मजिस्ट्रेट का न्यायालय अंतुले के मामले की तरह अनन्य अधिकार क्षेत्र का न्यायालय नहीं था। अपराध एक गैर-संज्ञेय अपराध था, और इसलिए यह अनिवार्य नहीं था कि इसका मुकदमा केवल प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा चलाया जाना चाहिए था। इस प्रकार याचिकाकर्ता यह दावा नहीं कर सका कि मजिस्ट्रेट के पास अपराध की सुनवाई करने का विशेष अधिकार क्षेत्र था, और कि राज्य मामले को सत्र न्यायाधीश को स्थानांतरित नहीं कर सकता था।

ऊपर जो कहा गया है, उसे ध्यान में रखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट के न्यायालय के पास एफ. ई. आर. ए. के प्रावधानों के उल्लंघन से संबंधित मामलों की सुनवाई करने के लिए एक विशेष अधिकार क्षेत्र था, और उन मामलों को विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था। वर्तमान में एक मामले में आरोपी आम थे, कई गवाह सामान्य होंगे, और इसलिए उनके सबूत भी सामान्य होंगे । ऐसी स्थिति में स्थानांतरण करने की उच्च न्यायालय की प्रशासनिक शक्ति को रणवीर यादव (उपर्युक्त) के मामले में बरकरार रखा गया है और इस न्यायालय के लिए वर्तमान मामले के तथ्यों में अलग दृष्टिकोण रखने का कोई कारण नहीं है।

18. याचिकाकर्ता ने एक कार्यवाही के हस्तांतरण के सवाल पर ए. एस. इम्पेक्स लिमिटेड (सुप्रा)के मामले में दिल्ली उच्च न्यायालय की एक खंडपीठ के फैसले पर भरोसा किया था।

श्री मल्होत्रा ने कहा कि हालांकि रणवीर यादव (उपर्युक्त) मामले में निर्णय उस मामले में खंड पीठ के संज्ञान में लाया गया था, लेकिन खंड पीठ ने गलती से यह अभिनिर्धारित किया था कि उस पर निर्भरता 'गलत' है, जैसा कि उस निर्णय के पैराग्राफ 12 के अंत में दिए गए वाक्य से देखा जा सकता है। इस निर्णय को अलग किया गया है और यह पाया गया है कि दिल्ली उच्च न्यायालय की एक अन्य खंड पीठ ने महेंद्र सिंह बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय और अन्य मामले में एक अच्छा कानून नहीं बनाया है। 2009 में दर्ज (151) कंपनी मामले 485 (दिल्ली). उस मामले में, न्यायालय प्रतिभूति और विनिमय बोर्ड अधिनियम, 1992 के तहत अभियोजनों को मजिस्ट्रेट के न्यायालय से सत्र न्यायालय में स्थानांतरित करने से संबंधित था, और उच्च न्यायालय ने इसे वैध और अनुमेय माना है। महेंद्र सिंह (उपरोक्त) मामले में खंड पीठ ने दिए गए फैसले पर भरोसा व्यक्त किया है कि ए आर अंतुले (ऊपर के) इस तरह के स्थानांतरण का विरोध करने से कोई मदद नहीं मिली, और यह सही भी है। यह कहने में कोई कठिनाई नहीं है कि ए. एस. एमपेक्स लिमिटेड (उपर्युक्त) कानून के सही प्रस्ताव को निर्धारित नहीं करता है।

19. उच्च न्यायालय के पास सी.आर.पी.सी की धारा 407 के तहत मामलों और अपीलों को स्थानांतरित करने की शक्ति है। जो कि अनिवार्य रूप से एक न्यायिक शक्ति है। सी.आर.पी.सी की धारा 407 (1) (सी) यह निर्धारित करता है कि, जहां यह पक्षों या गवाहों की सामान्य सुविधा के लिए होगा, या जहां यह न्याय के उद्देश्यों के लिए समीचीन था, उच्च न्यायालय ऐसे मामले को सुनवाई के लिए सत्र न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता है। इसका मतलब यह नहीं है कि उच्च न्यायालय की अपनी अधीक्षण प्रशासनिक शक्ति का प्रयोग करके मामलों को स्थानांतरित नहीं कर सकता है जो भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 के अधीन उपलब्ध है।

इस शक्ति के प्रयोग पर आपत्ति को दूर करते हुए, इस न्यायालय ने रणवीर यादव (उपर्युक्त) के पैराग्राफ 13 में इस प्रकार टिप्पणी कीः-

"13. हम श्री जेठमलानी के उपरोक्त विचार को साझा करने में असमर्थ हैं। जब तक किसी भी न्यायिक कार्यवाही में पक्षों के अधिकारों या हितों को प्रभावित किए बिना और पूर्वाग्रहपूर्ण रूप से प्रभावित किए बिना विशुद्ध रूप से प्रशासनिक आवश्यकता के लिए शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है, हमें यह मानने का कोई कारण नहीं मिलता है कि प्रशासनिक शक्तियों की न्यायिक शक्तियों को केवल इसलिए स्थान देना चाहिए क्योंकि किसी दिए गए परिस्थिति में वे सह- अस्तित्व में हैं।

20. ऊपर बताए गए कारणों से, याचिकाकर्ताओं द्वारा उठाई गई आपत्तियों में कोई सार नहीं है। उच्च न्यायालय ने सी.आर.पी.सी. की धारा 407 को देखा है, जिसे भारत के संविधान के अनुच्छेद 227 और 235 को संदर्भित किया गया है, और उसके बाद अपने विवादित निर्णय में निम्नानुसार कहा गया हैः-

" सी.आर.पी.सी का धारा 407, अनुच्छेद 227 और 235 अवलोकन करने के बाद मुझे यह अभिनिर्धारित करने में कोई संकोच नहीं है कि इस न्यायालय को या तो प्रशासनिक पक्ष में अर्थात् न्यायिक पक्ष में जूनियर को एक सक्षम न्यायालय के समक्ष लंबित किसी भी आपराधिक मामले को इस न्यायालय की अधिकारिता के भीतर दूसरे न्यायालय द्वारा सुनवाई और निर्णय के लिए स्थानांतरित करने की पूर्ण अधिकारिता है। यह न्यायालय अपनी प्रशासनिक शक्ति में निर्देश जारी कर सकता है कि विशेष प्रकृति के मामलों की सुनवाई अधिकार क्षेत्र वाले एफ विशेष न्यायालय द्वारा की जाएगी।

जो पहले कहा गया है उसे देखते हुए, हमारे पास उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण लेने का कोई कारण नहीं है।

21. दोनों विशेष अवकाश याचिकाएं, इसलिए उन्हें बर्खास्त कर दिया जाता है।

मदन बी. लोकुर, जे. 1. जबकि मैं मेरे विद्वान भाई गोखले के विचारों का समर्थन करता हूं, मैंने इस मामले में अलग से अपनी राय व्यक्त करना उचित समझा है।

2. मामले के तथ्यों को मेरे विद्वान भाई द्वारा संक्षेप में सामने लाया गया है और उन्हें दोहराना आवश्यक नहीं है।

स्थानांतरण की अधिसूचना की वैधता; '

3. विशेष न्यायाधीश को विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999 के तहत मामलों का निपटान करने और इस तरह मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित याचिकाकर्ताओं के मामले को प्रभावी ढंग से विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित करने के लिए अधिकृत करने वाली अधिसूचना को गैरकानूनी कहा जाता है क्योंकि स्थानांतरण एक ऐसी अदालत में है जिसे अपराध का मुकदमा चलाने का कोई अधिकार क्षेत्र नहीं है।

4. दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (संक्षेप में संहिता) की प्रथम अनुसूची के भाग 2 में यह उपबंध है कि तीन वर्ष और उससे अधिक के कारावास से किन्तु सात वर्ष से अधिक के कारावास से दंडनीय अपराध के लिए प्रथम श्रेणी के मजिस्ट्रेट द्वारा मामले का विचारण किया जाएगा। विदेशी मुद्रा विनियमन अधिनियम, 1973 की धारा 56 अब विदेशी मुद्रा प्रबंधन अधिनियम, 1999 द्वारा निरसित, अन्य बातों के साथ-साथ, इसके प्रावधानों के उल्लंघन के लिए, अधिकतम सजा कारावास होगी जो सात साल और जुर्माने के साथ तक बढ़ सकती है । इसलिए, याचिकाकर्ताओं के मामले को प्रभावी ढंग से आपराधिक विधि संशोधन अधिनियम, 1952 (संक्षेप में सी. एल. ए. अधिनियम) के तहत काम करने वाले विशेष न्यायाधीश (सत्र न्यायाधीश, अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश या सहायक सत्र न्यायाधीश के पद) को स्थानांतरित करने का अर्थ था कि इस विषय पर अधिकार क्षेत्र की कमी वाले न्यायालय द्वारा इसका मुकदमा चलाया जाए। इस विवाद के समर्थन में कुछ मार्गोअंतुले बनाम आर.एस. नायक, (1988) 2 एससीसी 602 में कुछ अंशों पर बहुत निर्भरता रखी गई थी।

5. अंतुले में प्रश्न (प्रासंगिक सीमा तक) था.. .. क्या यह न्यायालय अंतुले के खिलाफ आपराधिक कानून संशोधन अधिनियम, 1952 के तहत नियुक्त विशेष न्यायाधीश से मामले को उच्च न्यायालय में स्थानांतरित कर सकता था।
(देखें R.S.) नायक.बनाम ए.आर. अंतुले, (1984) 2 सेक 183)

इस अदालत ने नकारात्मक में जवाब दिया और इस निष्कर्ष के लिए तीन प्रमुख कारण वर्तमान मामले के लिए प्रासंगिक दिए गए थे।

6. सबसे पहले, यह नोट किया गया कि सी. एल. ए. अधिनियम की धारा 7 ने विशेष न्यायाधीश को सी. एल. ए. अधिनियम की धारा 6 की उप-धारा (1) के तहत अपराधों का मुकदमा चलाने के लिए विशेष अधिकार क्षेत्र दिया। सी. एल. ए. अधिनियम की धारा 7 8 इस प्रकार हैः विशेष न्यायाधीशों द्वारा विचारण योग्य मामलेः - (1) आर के बावजूदः दंड प्रक्रिया संहिता में निहित कुछ भी 1898 (1898 का 5) या किसी अन्य विधि में धारा 6 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट अपराधों का विचारण केवल विशेष न्यायाधीशों द्वारा किया जाएगा।

(2) धारा 6 की उपधारा (1) में विनिर्दिष्ट प्रत्येक अपराध का विचारण क्षेत्र के विशेष न्यायाधीश द्वारा किया जाएगा। जिसके भीतर यह प्रतिबद्ध था, या जहां ऐसे क्षेत्र के लिए एक से अधिक विशेष न्यायाधीश हैं, उनमें से किसी एक द्वारा जो राज्य सरकार द्वारा इस संबंध में निर्दिष्ट किया गया हो।

(3) किसी मामले की सुनवाई करते समय, एक विशेष न्यायाधीश धारा 6 में विनिर्दिष्ट अपराध के अतिरिक्त कोई अन्य अपराध भी कर सकता है, जिसके साथ अभियुक्त पर दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 (1898 का 5) के अधीन उसी विचारण में आरोप लगाया जा सकता है।

7. इस न्यायालय ने कहा कि चूंकि यह केवल विशेष न्यायाधीश है जो सी. एल. ए. अधिनियम की धारा 6 के तहत अपराधों की सुनवाई कर सकता है, इसलिए अंतुले के खिलाफ मामले को "उच्च न्यायालय" में स्थानांतरित नहीं किया जा सकता था। यह नोट किया गया कि एक विशेष न्यायाधीश द्वारा मुकदमा धारा के तहत अपराधों के मुकदमे के लिए अनिवार्य है। सी. एल. ए. अधिनियम की धारा 6 और यहां तक कि यह न्यायालय भी ऐसा आदेश पारित नहीं कर सका जो कानून द्वारा अधिकृत न हो।

8. दूसरा, सी. एल. ए. अधिनियम की धारा 7 (1) में मुकदमा चलाने का प्रावधान है। संहिता में किसी बात के होते हुए भी विशेष न्यायाधीश द्वारा मामला संहिता की धारा 406 के तहत मामलों को स्थानांतरित करने के लिए इस न्यायालय को उपलब्ध वैधानिक शक्ति को वैधानिक रूप से छीन लिया गया था। इसके अतिरिक्त, 288 सुप्रीम की धारा 406

एक संहिता ने केवल इस न्यायालय के मामलों और अपीलों को एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में या एक उच्च न्यायालय के अधीनस्थ एक आपराधिक न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय के अधीनस्थ समान या उच्चतर अधिकार क्षेत्र के दूसरे आपराधिक न्यायालय में स्थानांतरित करने में सक्षम बनाया।

संहिता की धारा 406 इस न्यायालय को सी. एल. ए. अधिनियम के तहत विशेष न्यायाधीश से उच्च न्यायालय में एक मामले को स्थानांतरित करने का अधिकार नहीं देती और भले ही उसने ऐसा किया हो, उस शक्ति को सी. एल. ए. अधिनियम द्वारा छीन लिया गया था। संहिता की धारा 406 इस प्रकार हैः-

406. मामलों और अपीलों को स्थानांतरित करने की उच्चतम न्यायालय की शक्तिः-

(1) जब कभी यह उच्चतम न्यायालय के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है कि इस धारा के अधीन कोई आदेश न्याय के प्रयोजनों के लिए समीचीन है, तो वह यह निदेश दे सकता है कि कोई विशेष मामला या अपील एक उच्च न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय में या एक उच्च न्यायालय के अधीनस्थ आपराधिक न्यायालय से दूसरे उच्च न्यायालय के अधीनस्थ समान या उच्चतर अधिकारिता वाले दूसरे आपराधिक न्यायालय में स्थानांतरित की जाए।

(2) उच्चतम न्यायालय इस धारा के अधीन कार्य केवल भारत के महान्यायवादी या आंशिक रूप से इच्छुक व्यक्ति के आवेदन पर ही कर सकेगा और ऐसा प्रत्येक आवेदन प्रस्ताव द्वारा किया जाएगा, जो तब के सिवाय जब आवेदक भारत का महान्यायवादी या राज्य का महाधिवक्ता हो, शपथपत्र या प्रतिज्ञान द्वारा समर्थित किया जाएगा।

(3) जहां इस धारा द्वारा प्रदत्त शक्तियों को हटाने के लिए कोई आवेदन खारिज कर दिया जाता है, वहां उच्चतम न्यायालय, यदि उसकी राय है कि आवेदन तुच्छ या परेशान करने वाला था, तो आवेदक को मुआवजे के रूप में किसी ऐसे व्यक्ति को ऐसी राशि का भुगतान करने का आदेश दे सकता है जिसने आवेदन का विरोध किया है जो एक हजार रुपये से अधिक नहीं है जो वह मामले की परिस्थितियों में उचित समझे।

9. तीसरा कारण संविधान के अनुच्छेद 142 के तहत इस न्यायालय को उपलब्ध स्थानांतरण की शक्ति से संबंधित है।

इस संदर्भ में, एक संविधान पीठ को संदर्भ दिया गया था प्रेम चंद गर्ग बनाम आबकारी आयुक्त, 1963 सपं. (1) एस. सी. आर. 885 में, इस न्यायालय का एक निर्णय जिसमें यह मत व्यक्त किया गया था किः

> "इस न्यायालय की शक्तियां निस्संदेह बहुत व्यापक हैं और वे न्याय के हित में होने का इरादा रखते हैं और हमेशा उनका प्रयोग किया जाएगा। लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि इस न्यायालय द्वारा एक आदेश दिया जा सकता है जो संविधान के भाग III द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के साथ असंगत है। एक आदेश जो- यह न्यायालय पक्षकारों के बीच पूर्ण न्याय करने के लिए आदेश में दे सकता है, न केवल संविधान द्वारा गारंटीकृत मौलिक अधिकारों के अनुरूप होना चाहिए, बल्कि यह प्रासंगिक वैधानिक कानूनों के मूल प्रावधानों के साथ भी असंगत नहीं हो सकता है।

10. चूंकि इस न्यायालय का विशेष न्यायाधीश से मामले को उच्च न्यायालय में स्थानांतरित करने का आदेश वैधानिक कानून के विपरीत था और (जैसा कि अंतुले में बाद के भाग में अभिनिर्धारित किया गया था) संविधान के अनुच्छेद 14 और अनुच्छेद 19 के विपरीत था, इसलिए स्थानांतरण का आदेश रद्द करने योग्य था।

11. इस संदर्भ में, इस न्यायालय ने यह भी कहा कि अधिकार क्षेत्र बनाने या बढ़ाने की शक्ति विधायी है और कोई भी न्यायालय, चाहे वह उच्चतर हो या निम्न या दोनों संयुक्त रूप से, किसी न्यायालय के अधिकार क्षेत्र को बढ़ा नहीं सकता है। इसके आधार पर, इस न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि अंतुले के मामले को विशेष न्यायाधीश से उच्च न्यायालय में स्थानांतरित करना कानूनी रूप से गलत था।

12. अंतुले बाद में रणबीर यादव बनाम बिहार राज्य, (1995) 4 एससीसी 392 में विचार के लिए सामने आए। रिपोर्ट के पैराग्राफ 14 में, यह नोट किया गया था कि सीएलए अधिनियम की धारा 7 (1) की व्यक्त भाषा, संहिता में निहित मामलों को किसी अन्य न्यायालय में स्थानांतरित करने के अधिकार को छीन लेती है जो एक विशेष न्यायालय नहीं था और यह कि यह संहिता की धारा 406 और धारा 407 में कुछ भी निहित होने के बावजूद था। इस संबंध में यही कहा गया थाः

"अब ए.आर. अंतुले पर आ रहा हूँ। अंतुले मामले में हम पाते हैं कि बहुमत के फैसले में निर्धारित कानून के सिद्धांत, जिन पर श्री जेठमलानी ने हमारा ध्यान आकर्षित किया था, यहां लागू होने का कोई तरीका नहीं है। इस बारे में प्रश्न उठे कि क्या (1) उच्च न्यायालय दंड विधि संशोधन अधिनियम, 1952 (संक्षेप में "1952 अधिनियम") के अनुसार उसके अधीन गठित विशेष न्यायालय द्वारा विचारण योग्य मामले को दूसरे न्यायालय को हस्तांतरित कर सकता है, जो विशेष न्यायालय नहीं था और (ii) विशेष न्यायालय के समक्ष लंबित मामले को उच्च न्यायालय को स्थानांतरित करने का उच्चतम न्यायालय का पूर्व आदेश वैध और उचित था। दोनों प्रश्नों का नकारात्मक उत्तर देते हुए विद्वत न्यायाधीशों ने बहुमत का दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा कि 1952 के अधिनियम की धारा 7 (1) ने एक ऐसी शर्त उत्पन्न की जो उक्त अधिनियम की धारा 6 (1) के अधीन अपराधों के विचारण के लिए अनिवार्य थी। शर्त यह थी कि दंड प्रक्रिया संहिता या किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी उक्त अपराध का विचारण केवल विशेष न्यायाधीशों द्वारा किया जाएगा। अतः व्यक्त शर्तों द्वारा इसने संहिता में निहित मामलों को किसी अन्य न्यायालय को हस्तांतरित करने का अधिकार छीन लिया जो एक विशेष न्यायालय नहीं था और यह संहिता की धारा 406 और 407 में कुछ भी निहित होने के बावजूद था और (ii) उच्चतम न्यायालय का मामले को उच्च न्यायालय में स्थानांतरित करने का पूर्व आदेश कानून द्वारा अधिकृत नहीं था, अर्थात्, 1952 अधिनियम की धारा 7 (1) और सर्वोच्च न्यायालय, अपने निर्देश द्वारा, बॉम्बे उच्च न्यायालय को किसी ऐसे मामले की सुनवाई करने के लिए अधिकारिता प्रदान नहीं कर सकता था जिसके लिए उसके पास 1952 अधिनियम की योजना के तहत ऐसी अधिकारिता नहीं थी।

13. जहां तक वर्तमान मामले का संबंध है, एफ. ई. आर. ए. की धारा 56 और एफ. ई. आर. ए. की धारा 61 के पठन से यह स्पष्ट है कि एफ. ई. आर. ए. के उपबंधों के उल्लंघन से संबंधित मामलों का विचारण करने के लिए मजिस्ट्रेट को अनन्य अधिकारिता प्रदान नहीं की गई है। अधिकारिता संबंधी विशिष्टता के अभाव में, अंतुले में निर्धारित विधि का सिद्धांत लागू नहीं होता है और विशेष न्यायाधीश . को याचिकाकर्ताओं के खिलाफ मामले का परीक्षण करने के लिए अधिकारिता प्रदान की गई है।

कमलेश कुमार बनाम झारखंड राज्य

[मदन बी. लोकुर, जे.]

अपील करने का अधिकार

14. यह मानते हुए यह तर्क दिया गया था कि कि कानूनी रूप से मामला वैध रूप से विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित किया जा सकता था, याचिकाकर्ता गंभीर रूप से पूर्वाग्रहग्रस्त हैं क्योंकि मजिस्ट्रेट के फैसले से सत्र न्यायाधीश को अपील करने के उनके अधिकार को छीन लिया जाता है। याचिकाकर्ताओं को सुने बिना उच्च न्यायालय द्वारा की गई इस पूर्वाग्रहपूर्ण कार्रवाई के कारण, विशेष न्यायाधीश को मामले की सुनवाई करने की शक्ति प्रदान करने वाली अधिसूचना को रद्द कर दिया जाना चाहिए।

15. वर्तमान मामले में याचिकाकर्ताओं के लिए उपलब्ध अपील के अधिकार को मजिस्ट्रेट से विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित करके छीन नहीं लिया जाता है। याचिकाकर्ताओं के पास अपील करने का अधिकार बना हुआ है, लेकिन यह केवल मंच है जो बदल गया है। अब वे विशेष न्यायाधीश के आदेश से उच्च न्यायालय में अपील कर सकते हैं। इसलिए, ऐसा नहीं है कि याचिकाकर्ताओं के मामले को विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित करके एक उच्च मंच में अपने मुद्दे को आंदोलन करने के किसी भी अधिकार से वंचित किया जाता है।

16. अब यह अच्छी तरह से तय हो गया है कि एक वादी को न तो किसी विशेष मंच पर अपील करने का अधिकार है और न ही उसके मामले में किसी विशेष प्रक्रिया का पालन करने पर जोर देने का। यह बहुत पहले राव शिव बहादुर में बसाया गया था। सिंह बनाम विंध्य प्रदेश राज्य, 1953 एस. सी. आर. 118, जिसमें इस न्यायालय की एक संविधान पीठ ने अभिनिर्धारित किया:

"अपराध करने के अभियुक्त व्यक्ति को न्यायालय द्वारा विचारण का कोई मौलिक अधिकार नहीं है। एक विशेष अदालत या एक विशेष प्रक्रिया द्वारा, भेदभाव के रूप में या किसी अन्य मौलिक अधिकार के उल्लंघन के माध्यम से किसी भी संवैधानिक आपत्ति में शामिल हो सकता है ।

17. इस उक्ति का पालन भारत संघ बनाम सुकुमार जी पाइन, ए. आई. आर 1966 एस. सी. 1206 में किया गया था।

18. इसी तरह, मारिया क्रिस्टीना डी सूजा सदर बनाम अम्रिया जुराना परेरा पिंटो, (1979) 1 सेक 92 में यह कुछ अधिक विस्तृत रूप से आयोजित किया गया था:

पीठ ने कहा, "इसमें कोई संदेह नहीं है कि अपील का अधिकार एक मूल अधिकार है और यह प्रथम दृष्टांत के न्यायालय में शुरू होते ही वादी में निहित हो जाता है और ऐसा अधिकार या उसके संबंध में कोई उपाय ऐसे अधिकार प्रदान करने वाले अधिनियम के किसी भी निरसन से तब तक प्रभावित नहीं होगा जब तक कि निरसनकारी अधिनियम स्पष्ट रूप से या आवश्यक निहितार्थ द्वारा उसके संबंध में ऐसे अधिकार या उपाय को छीन नहीं लेता है।..... इस स्थिति का निपटारा प्रिवी काउंसिल और इस न्यायालय (कोलोनियल शुगर रिफाइनिंग कंपनी लिमिटेड बनाम इरविंग, [1905] एसी 369 और गारिकापट्टी वीराया बनाम एन. सुब्बला चौधरी, 1957 एससीआर 488) के निर्णयों द्वारा भी किया गया है, लेकिन जिस मंच पर ऐसी अपील दायर की जा सकती है वह निश्चित रूप से एक प्रक्रियात्मक मामला है और इसलिए, अपील, जिसका अधिकार एक निरस्त अधिनियम के तहत है, को निरसन अधिनियम द्वारा प्रदान किए गए मंच में दर्ज करना होगा।

19. *टी. बरई बनाम हेनरी आह हो,* (1983) 1 एस. सी. सी. 177 में रिपोर्ट के पैरा 17 में यह अवलोकन किया गया था कि अपराध करने के अभियुक्त व्यक्ति को किसी विशेष प्रक्रिया द्वारा विचारण का कोई अधिकार नहीं है। इस दृष्टिकोण का अनुसरण मेसर्स राय बहादुर सेठ श्रीराम दुर्गाप्रसाद बनाम प्रवर्तन निदेशक, (1987) 3 एससीसी 27 में किया गया था।

20. इसलिए, यह गंभीरता से आग्रह नहीं किया जा सकता है कि याचिकाकर्ताओं को अपीलीय मंच के परिवर्तन से पूर्वाग्रह था।

स्थानांतरण की प्रक्रियाः

21. क्या संहिता की धारा 407 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन किए बिना उच्च न्यायालय द्वारा मामले का हस्तांतरण कानूनी रूप से अनुमत था?

22. ऐसा ही एक प्रश्न रणबीर यादव में विचार के लिए सामने आया और इस न्यायालय ने उच्च न्यायालय में शक्ति के द्वैत को नोट किया। यह देखा गया कि उच्च न्यायालय के संहिता की धारा 407 से किसी मामले को एक अदालत से दूसरी अदालत में स्थानांतरित करने की न्यायिक शक्ति है।

कमलेश कुमार बनाम झारखंड राज्य 293

[मदन बी। लोकुर, जे।]

संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत किसी मामले को एक अदालत से दूसरी अदालत में स्थानांतरित करने का इसके पास प्रशासनिक शक्ति भी है ।

23. संविधान के अनुच्छेद 227 के संदर्भ में, अदालत ने रणबीर यादव के पैराग्राफ 12 में कहा कि न्यायालय के पास सभी न्यायालयों और अधिकरणों का अधीक्षण है। उन सभी क्षेत्रों में जिनके संबंध में यह अभ्यास करता है अधिकार क्षेत्र और अपनी पूर्ण प्रशासनिक शक्ति में, उच्च अदालत एक मामले को एक अदालत से दूसरी अदालत में स्थानांतरित कर सकती है।

आगे यह अभिनिर्धारित किया कि जब तक शक्ति का प्रयोग किया जाता है, प्रशासनिक अनिवार्यता , बिना किसी बाधा के या पूर्वाग्रह से किसी भी न्यायिक मामले के पक्षों के अधिकारों और हितों को प्रभावित करते हुए, यह मानने का कोई कारण नहीं है कि प्रशासनिक शक्तियों को केवल इसलिए न्यायिक शक्तियों के अधीन होना चाहिए क्योंकि परिस्थितियाँ सह- अस्तित्व में हैं।

24. वर्तमान मामले में, उच्च न्यायालय, हो सकता है धारा 407 के तहत स्थानांतरण की अपनी न्यायिक शक्ति का प्रयोग किया हो (यदि ऐसा करने के लिए कहा जाता है) और अनुच्छेद 227 के तहत यह भी प्रयोग किया जा सकता था, हस्तांतरण की इसकी प्रशासनिक शक्ति संविधान, जो उसने किया, जैसा कि कानून विभाग, झारखंड सरकार द्वारा उच्च न्यायालय के महापंजीयक द्वारा जारी झारखंड सरकार के सचिव को 6 वीं मई 2002 के पत्र से स्पष्ट है । तथ्य यह है कि एक प्रशासनिक आवश्यकता से, उच्च न्यायालय ने इसका प्रयोग करने का निर्णय लिया, पूर्ण प्रशासनिक शक्ति स्वयं की ओर नहीं ले जाती है,निष्कर्ष निकाला कि मजिस्ट्रेट से विशेष न्यायाधीश मामले का स्थानांतरण गैरकानूनी था। इस मामले में कार्रवाई की वैधता पर सवाल नहीं उठाया जा सकता, क्योंकि याचिकाकर्ताओं को इस तरह के स्थानांतरण के कारण इस मामले में कोई पूर्वाग्रह नहीं किया गया है।

संशोधन का अधिकार

25. यदि मामला मजिस्ट्रेट से विशेष न्यायाधीश को स्थानांतरित किया जाता है तो क्या याचिकाकर्ताओं का पुनरीक्षण का अधिकार छीन लिया गया है?

26. यह प्रश्न इस धारणा पर आगे बढ़ता है कि वहाँ पुनरीक्षण का अधिकार है।

एक संविधान पीठ, प्रणब कुमार मित्र बनाम पश्चिम बंगाल राज्य, 1959 (1) सप्लीमेंट, एस. सी. आर. 63 ने कई दशक पहले "सही" मुद्दे पर विराम लगा दिया था। यह अभिनिर्धारित किया गया था कि किसी आदेश को संशोधित करने की शक्ति एक विवेकाधीन शक्ति है जिसका प्रयोग न्याय की पहचान में किया जाना है और उस शक्ति का प्रयोग किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा। यह आयोजित किया गया थाः

"संहिता की धारा 439 द्वारा निहित उच्च न्यायालय की पुनरीक्षण शक्तियां, धारा 435 के साथ पढ़ें, वादी में कोई अधिकार पैदा नहीं करते हैं, लेकिन केवल यह देखने के लिए उच्च न्यायालय की शक्ति का संरक्षण करते हैं कि न्याय आपराधिक न्यायशास्त्र के मान्यता प्राप्त नियमों के अनुसार कर दिया है, और यह कि आपराधिक न्यायालयों को उनके अधिकार क्षेत्र से अधिक नहीं करते हैं, या संहिता द्वारा उनमें निहित अपनी शक्तियों का दुरुपयोग करते हैं।

27. अक्लू अहीर बनाम रामदेव राम, (1973) 2 एस. सी. सी. 583 में इस न्यायालय ने एक बार फिर उच्च न्यायालय में निवेश की गई पुनरीक्षण की शक्ति की ओर ध्यान दिलाया और इसे गंभीर अन्याय को सही करने के लिए एक "असाधारण विवेकाधीन शक्ति" के रूप में वर्णित किया। स्पष्ट रूप से इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि एक वादी को एक उच्च न्यायालय द्वारा प्रतिकूल आदेश को संशोधित करने का "अधिकार" है। इसके विपरीत, यदि संशोधन करने का कोई "अधिकार" है, तो इसे उच्च न्यायालय में निवेश किया जाता है।

28. जबकि एक उच्चतर न्यायालय की पुनरीक्षण शक्ति वास्तव में इसे एक गंभीर त्रुटि को ठीक करने में सक्षम बनाती है, उस शक्ति का अस्तित्व एक वादी को कोई संबंधित अधिकार प्रदान नहीं करता है। यही कारण है कि यदि मामले के तथ्य और परिस्थितियां अपने विवेकाधिकार के प्रयोग की गारंटी नहीं देती हैं, तो किसी दिए गए मामले में, एक उच्च न्यायालय अपनी पुनरीक्षण की शक्ति का प्रयोग करने से इनकार कर सकता है। यही कारण है कि यह सम्मानपूर्वक कहा गया है कि एक संशोधन एक अधिकार नहीं है, बल्कि एक पक्ष के लिए उपलब्ध केवल एक "प्रक्रियात्मक सुविधा" है। यदि मामले को इस दृष्टि से देखा जाए, तो मजिस्ट्रेट से विशेष न्यायाधीश को मामले का हस्तांतरण याचिकाकर्ताओं के लिए उपलब्ध इस प्रक्रियात्मक सुविधा को नहीं छीनता है। यह केवल मंच को बदल देता है और जैसा कि पहले ही ऊपर कहा जा चुका है, एक अंतर्वर्ती आदेश को संशोधित करने के लिए उस मंच को चुनने का याचिकाकर्ताओं के पास कोई अधिकार नहीं है जिसमें अपील दायर की जाए या याचिका दायर की जाए।

29. रिलायंस को याचिकाकर्ताओं के लिए विद्वान वकील द्वारा ए एस इम्पेक्स लिमिटेड बनाम दिल्ली उच्च न्यायालय, 107 (2003) डीएलटी 734 में दिल्ली उच्च न्यायालय के डिवीजन बेंच के फैसले पर रखा गया था।

यह निर्भरता न केवल गलत है, बल्कि मेरी राय में, उस निर्णय को सही कानून निर्धारित नहीं करने के रूप में खारिज कर दिया जाना चाहिए।

30. उस मामले में, उच्च न्यायालय ने प्रशासनिक रूप से 31 दिसंबर 2001 को या उससे पहले परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत दायर मामलों को स्थानांतरित करने और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीशों को मजिस्ट्रेटों के समक्ष लंबित मामलों को स्थानांतरित करने का निर्णय लिया। तदनुसार मामलों के हस्तांतरण के लिए एक अधिसूचना जारी की गई थी और अंतुले में निर्धारित कानून के आधार पर दिल्ली उच्च न्यायालय द्वारा इसे रद्द कर दिया गया था। जैसा कि पहले ही ऊपर उल्लेख किया गया है, अंतुले में निर्धारित कानून में सीमित अनुप्रयोग है और यह उन मामलों के लिए प्रासंगिक नहीं है जिनसे हम निपट रहे हैं। रणबीर यादव में यह स्पष्ट रूप से समझाया गया था। लेकिन दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय की टिप्पणियों को नजरअंदाज करते हुए कहाः "उस मामले में न्यायालय ने मामले को एक मजिस्ट्रेट के न्यायालय से दूसरे मजिस्ट्रेट के न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया क्योंकि पहले न्यायालय में आवास की कमी थी। यह हाथ का मामला नहीं है।

यह ऐसा मामला नहीं था जहां अधिकार क्षेत्र को मजिस्ट्रेट के न्यायालय से सत्र न्यायालय में स्थानांतरित कर दिया गया था। दिल्ली उच्च न्यायालय ने इस गलत आधार पर भी कार्यवाही की कि मामलों को स्थानांतरित करने के लिए उच्च न्यायालय को उपलब्ध पूर्ण प्रशासनिक शक्ति के प्रयोग का अर्थ था, मजिस्ट्रेटों को परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 की धारा 138 के तहत मामलों की सुनवाई करने के लिए सशक्त करने वाले वैधानिक प्रावधानों को दरकिनार करना और अतिरिक्त सत्र न्यायाधीशों को उस अधिकार क्षेत्र को प्रदान करना। उच्च न्यायालय ने संविधान के अनुच्छेद 227 के तहत उच्च न्यायालय को उपलब्ध शक्ति की सही ढंग से सराहना नहीं की।

31. ए. एस. एल. एमपेक्स में त्रुटि को दिल्ली उच्च न्यायालय की खंड पीठ ने महेंद्र सिंह बनाम दिल्ली का उच्च न्यायालय, (2009) 151 कॉम्प कैस 485 (दिल्ली) और एन.जी में शेठ वी सी.बी.आई., 151 (2008) DLT 89.

दोनों मामलों में डिवीजन बेंच ने ए.एस इम्पेक्स से अलग दृष्टिकोण लिया।

हालाँकि, डिवीजन बेंच, ए. एस. एल. एमपेक्स द्वारा दिए गए दोनों निर्णयों को खारिज नहीं किया जा सका। इसलिए, आई बी औपचारिकता को पूरा करता है और ए.एस इम्पेक्स को ओवररूल करता है क्योंकि यह इस संबंध में सही नियम निर्धारित नहीं करता है।

32. उपर्युक्त कारणों से, विशेष अनुमति याचिकाओं को खारिज कर दिया जाता है।

बिभूति भूषण बोस **एसएलपी खारिज कर दी गई।**

यह अनुवाद (सुधीर), पैनल अनुवादक के द्वारा किया गया।